लेख

सरोगेसी: व्यावसायिक या निस्वार्थ

मोहन राव

फ़िल्म अभिनेता आमिर खान और उनकी पत्नी किरण राव ने हाल ही में सरोगेसी (प्रतिनिधि कोख) की मदद से अपने आनुवांशिक बेटे आज़ाद के पैदा होने की खबर अखबार में दी। उन्होंने खुदा, विज्ञान, तकनीक, परिवार व दोस्तों का भी शुक्रिया अदा किया। इस नाटक में जिस महत्वपूर्ण किरदार के ज़िक्र का अभाव था वह थी जन्म देने वाली सरोगेट (कोख किराए पर देने वाली महिला) महिला। शायद ऐसा इसलिए था क्योंकि उसे तय की गई रकम अदा कर दी गई थी और इसके पश्चात किसी का उसके प्रति कोई दायित्व नहीं था।

यहां एक ऐसी विडम्बना है जिस पर पहले भी गौर किया जा चुका है। साहित्य गवाह है कि हर सरोगेट से कहा जाता रहा है कि वह धरती पर एक ऐसा नेक काम करने जा रही है जो केवल ईश्वर के ही बस की बात है— संतानहीन दम्पती को जीवनदान देने का काम। फिर भी गर्भाशय किराए पर लेने वाले दम्पतियों के लिए यह एक व्यावसायिक रिश्ता ही है। यहां खरीददार और विक्रेता के बीच कोई लगाव या बेचैनी भरा संबंध नहीं है। सच तो यह है कि उपहार में मिली वस्तु वापिस ली जा सकती है परन्तु खरीदी हुई वस्तु की वापसी नामुमकिन है।

सरोगेसी से जुड़े मुद्दे

मीडिया के जोश और मुद्दों के 'यौनिक' पहलुओं को देखते हुए सरोगेसी और सहायक प्रजनन तकनीक (ए.आर.टी.) से उभरने वाले मुद्दों पर वैज्ञानिक शोध की गई है। लगभग सभी अध्ययनों ने संकेत दिया है कि देश में अनियंत्रित स्वास्थ्य सेवाओं के चलते इसमें अनेक अनैतिक व्यवहार शामिल हैं और आईसीएमआर मार्गदर्शकों का उपयोग अधिकतर उल्लंघन की स्थिति में ही किया जाता है। *समा* (2010) व अन्य पक्षों ने इसमें शामिल महिलाओं की ओर इशारा किया है जो आर्थिक कारणों से अपने शरीर के शोषण के लिए मजबूर होती हैं।

वास्तव में सहायक प्रजनन तकनीक उद्योग को नियंत्रित करने वाला ड्राफ़्ट बिल दरअसल इसी उद्योग के आदेश पर बनाया गया है और इसमें सरोगेट औरतों की सुरक्षा से अधिक इस उद्योग का स्वार्थ निहित है। समीक्षकों ने भारत के इस व्यवहार की अखंड स्वीकृति के पीछे पितृसत्ता के मूल पहलुओं का भी निरीक्षण किया है। पर हैरानी तो इस बात पर है कि इनमें से कोई भी आलोचना निःस्वार्थ सरोगेसी के अतिरिक्त किसी भी अन्य प्रकार की सरोगेसी के आदान-प्रदान पर प्रतिबंध लगाने की मांग नहीं करती। इस लेख में इसी दृष्टिकोण पर चर्चा की गई है।

हालांकि महिलाओं के प्रजनन श्रम की प्रत्यक्षता और मूल्यवर्धन को नारीवाद के दूसरे दौर में हिचक और अनिच्छा से स्वीकार लिया गया है परन्तु अधिशेष प्रजनन श्रम के विचार को न तो पूरी तरह स्वीकारा गया है और न ही इस पर गहन चिंतन किया गया है। यह तथ्य हैरतंगेज़ है क्योंकि पिछले बीस वर्षों मे जीव विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले विकास ने वैश्विक उपाचस अर्थव्यवस्था के सभी पहलुओं का व्यापारीकरण कर दिया है। वॉलबी व कूपर (2010:4) दावा करते हैं कि "महिलाएं मूल कोशिका उद्योग, जिसमें भारी मात्रा में मानव भ्रूण, अंडाणु, भ्रूण ऊतक और नाल-रक्त की आवश्यकता होती है, में प्रमुख ऊतक 'दाता' होती हैं। ये उद्योग मातृक-भ्रूणीय संबंध को एक उत्पादक स्थल की तरह आंकते हैं...।"

पश्चिमी देशों में अतिरिक्त (बचे हुए भ्रूण) या बेकार भ्रूण-अंडाणु के रूप में हासिल किए जाते हैं जिनकी पुनरुत्पादन क्षमता लाभ पाने वालों से छुपाई नहीं जाती। परन्तु भारत, चीन और पूर्वी यूरोपीय देशों में यह आदान-प्रदान प्रायः एक सौदे की तरह ही होता है।

यहां मैं जो कहना चाहता हूं वह यह है— क्या हम इस सौदे को शोषण, अतिरिक्त श्रम के उपयोग या फिर विशेष लक्षणों के आदान-प्रदान के रूप में देखते हैं, जिसके फलस्वरूप इसके लिए नीतियों के मायने अलग होते हैं?

महिलाओं का प्रजनन श्रम

घरेलू अर्थव्यवस्था के पुनरूत्पादन में महिलाओं के श्रम को न स्वीकारने के पीछे एक मुख्य कारण है- औरतों को परोपकारी के रूप में देखना। घर के रख-रखाव में लगने वाले उनके श्रम को प्रेम का प्रतीक, उपहार अथवा दान समझा जाता है जिसकी बाज़ार में कीमत लगाना इन भावनाओं की 'तौहीन' होती है। इसलिए इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है कि महिलाओं के प्रजनन श्रम को भी इसी तरह देखा जाता है। यानी जो उनके काम का नहीं या 'बेकार' हो उसे वह दूसरों के फायदे के लिए दान कर देती हैं। जैसा कि डिकिनसन (2007:56) बताते हैं, "औरतों के शरीर के 'उत्पादनों' के वस्तुकरण से उनका मूल्य काफी बढ़ गया है। परन्तु इस बढ़त में महिलाओं के योगदान को बाज़ार में स्वीकारा नहीं जाता क्योंकि इसे घरेलू उत्पादन के तहत देखा जाता है। जिस सच्चाई को नज़रअंदाज़ किया जाता है वह यह है कि इस 'दान' पर एक पारदेशी उद्योग सट्टा-बाज़ार में उम्मीदें और भविष्य के सपने बेचकर मुनाफ़ा कमा रहा है।" सेक्सटन (2011) ने इस पारदेशी व्यवसाय को 'उम्मीद के नोटों की सट्टेबाज़ी' का नाम दिया है। हाजिज़ (2012) ने इस वैश्विक जैव अर्थव्यवस्था को 'एक पूंजी आधारित सपने बेचने के कारोबार' का नाम दिया है।

यह वैश्विक उद्योग जिसमें पारदेशी संघों का प्रभुत्व है का संयुक्त राष्ट्र में 76 बिलियन डॉलर तथा यूरोपियन यूनियन में 3.23 ट्रिलियन डॉलर का स्वामित्व है। इस विशाल उद्योग में सहायक प्रजनन तकनीक व सरोगेसी एक छोटा परन्तु महत्वपूर्ण हिस्सा है। महत्वपूर्ण इसलिए क्योंकि इस वैश्विक जैव-अर्थव्यवस्था के लिए 'कच्चा' माल औरतों के शरीर से आता है और बिक्री के पहले इसमें अन्य दूरवर्ती कीमतें जोड़ी जाती हैं। यहां यह जोड़ना ज़रूरी है कि हम महिला के शरीर से जितना दूर जाते जायेंगे उतनी अधिक दूरवर्ती कीमतें इसमें जुड़ती जाएगीं। यह एक पुरुष प्रधान उद्योग है जिसमें जीव-वैज्ञानिक जो औरतों से मिलने वाले 'उपहारों' को पेटेन्ट करते हैं, बायोटेक और पूंजी निवेश करने वाली कंपनियां (जो वैज्ञानिकों द्वारा बेचे जाने वाले पेटेन्ट और इनकी बिक्री से होने वाले मुनाफ़े में हिस्सेदार होती हैं) भी भागीदार होती जाती हैं।

थॉमसन के अनुसार प्रजनन की जैव-चिकित्सीय प्रणाली में प्रजनन को औद्योगिक रूप में उत्पादक बनाने के लिए उपज का कृन्तक (क्लोन) व कक्ष-रेखाओं (सेल-लाइन) की तरह मानकीकरण किया जाता है। फ्रैंकलिन व लॉक (2003) के समकालीन जैव-विज्ञान विश्लेषण के अनुसार प्रजनन जीव-विज्ञान की धुरी है और पूंजी और मूल्य उत्पत्ति का प्रमुख साधन भी। वे दावा करते हैं कि श्रम को स्त्रीकरण और उसके उत्पादन को उपहार और निःस्वार्थ उपयोग से बचाने के लिए मानकीकरण ज़रूरी है।

डिकिनसन समझाते हैं कि अनुवांशिक लोकहित पर चिन्ता व बहस तब प्रखर होती है जब पुरुष कक्ष-रेखा के स्रोत होते हैं। औरतों के साथ ऐसा नहीं है। उनका शरीर प्राकृतिक रूप से प्रजनन के लिए तैयार होता है। परन्तु वैश्विक जीव-अर्थव्यवस्था में स्त्री व पुरुष दोनों के शरीर के वस्तुकरण की संभावना होती है।

विश्व बाज़ार व प्रजनन श्रम

वॉलबी और कूपर दावा करते हैं कि प्रजनन अ-राष्ट्रीयकरण के कारण विश्व बाज़ार इसके लिए खुला है। लिहाज़ा पूर्वी यूरोप में महिलाएं वेश्यावृति के साथ-साथ पारदेशी आई. वी.एफ़. क्लीनिकों के माध्यम से अंडाणु की बिक्री के लिए भी उपलब्ध हैं। इस तथ्य का दस्तावेज़ीकरण किया गया है कि युक्रेनी महिलाएं अपने गर्भपात कराए गए भ्रूण को कॉसमेटिक क्लीनिकों और स्पा को एक हज़ार पौंड में

बेच सकती हैं। इन्हीं स्रोतों से मूल कोशिकाओं पर शोध और इलाज के लिए माल की सप्लाई होती है। रक्त कक्ष रेखा, खेड़ी, भ्रूणीय मूल कोशिका, भ्रूण आदि में भी विश्व स्तर पर व्यापार किया जाता है। अनेक कक्ष रेखाओं को वैश्विक विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिकों, बायोटेक कम्पनियों द्वारा पेटेन्ट भी किया जाता है।

श्रम के मार्क्सवादी विश्लेषण के अनुसार एक श्रमिक का उत्पादन बतौर अतिरिक्त तभी वसूल होता है जब माल की बिक्री बाज़ार में होती है यानी जब माल श्रमिक से अलग हो जाता है। तो क्या प्रजनन श्रम के मामले में हम इसी तर्क का इस्तेमाल करते हुए यह कह सकते हैं कि अतिरिक्त की वसूली तभी होगी जब माल को एक वस्तु की तरह मूल कोशिका, कक्ष रेखा, पुनरुत्पादक चिकित्सा अथवा सरोगेट बच्चे के जन्म के लिए उपयोग किया जा सकेगा? (मार्क्स 1976: पेज़ 251,262)

इसका अर्थ यह हुए कि उत्पादक को अतिरिक्त की वसूली तभी होगी जब वस्तु बिक जाएगी और अतिरिक्त श्रम की भी कीमत भी उसी समय आंकी जाएगी। प्रजनन श्रम के मामले में भी हम यही देखते हैं। जैसा कि सुंदरराजन लिखते हैं- "यहां पर मूल्य श्रम का नहीं बल्कि ज़िंदगी का है और स्वास्थ्य श्रम का मददगार साधन न होकर ज़िंदगी का सूचक बन जाता है।" (2007:81)

एक अन्य दार्शनिक ऑलिवर के अनुसार श्रम के अलगाव को लेकर मार्क्स का विश्लेषण श्रम के अन्य रूपों पर केवल लाक्षणिक तौर पर लागू होता है। परन्तु सरोगेसी के मुद्दे पर यह पूरी तरह सही बैठता है। सरोगेसी में उत्पादन एक बेजान वस्तु नहीं है बल्कि उत्पादन यानी बच्चा एक जैविक शरीर का सहज अंश होता है। ऐसी स्थिति में सरोगेट का दो बार अलगाव होता है- एक बार अपने जैविक शरीर से और दूसरी बार जैविक बच्चे से। उसकी आज़ादी दरअसल श्रम के अलगाव से उपजा एक धोखा, एक भ्रम है।

व्यावसायिक सरोगेसी पर यूरोप के अनेक देशों में रोक लगा दी गई है और फ्रांस में शरीर के किसी भी अंग के वस्तुकरण की इज़ाज़त नहीं है। जिस तरह से खून की बिक्री नहीं की जा सकती उसी तरह शुक्राणु, अंडाणु और कक्ष रेखाओं को भी बेचा नहीं जा सकता। शरीर का कोई भी अंग हम बेच नहीं सकते। इस खरीद-फरोख़्त का विश्व व्यापार संघ स्तर पर जैविक उत्पादनों के पेटेन्ट व सम्पत्ति अधिकारों पर होने वाल चर्चाओं पर गहन प्रभाव पड़ता है।

भारत में प्रजनन पर्यटन

भारत अब विश्व प्रजनन पर्यटन उद्योग के साथ जुड़ रहा है। इस उद्योग की संयुक्त राष्ट्र में कीमत 3 बिलियन डॉलर है। 1978 में भारत के पहले परख नली शिशु के जन्म के बाद सरकार ने मुंबई के "इंस्टिट्यूट फ़ॉर रिसर्च ऑन रिप्रोडक्शन" में आईवीएफ पर शोध को प्रोत्साहन दिया। इस अगुवाई को राज्य की मदद से स्वास्थ्य क्षेत्र में काम कर रहे निजी और कॉरपोरेट सेक्टर ने भी प्रोत्साहन दिया। आईसीएमआर के अनुसार 2005 में भारत में ढाई सौ आईवीएफ़ क्लीनिक थे। इण्डिन एआरटी सोसाइटी में छः सौ से अधिक क्लीनिकों की सदस्यता है। दिलचस्प बात यह है कि ये क्लीनिक अब भारत के छोटे शहरों में भी अपनी पकड़ बना रहे हैं। (समा 2010)

भारत सहायक प्रजनन तकनीकों और सरोगेसी के लिए एक गंतव्य के रूप में उभर रहा है जिससे सिर्फ़ सरोगसी व्यवसाय ही 445 मिलियन डॉलर मूल्य का है। भारत में आईवीएफ के एक चक्र की कीमत 500 डॉलर है जबकि संयुक्त राष्ट्र में इसका खर्चा 5000 डॉलर है। यह भी याद रखना ज़रूरी है कि भारत में सहायक प्रजनन तकनीक उद्योग मूल कोशिका उद्योग को नियमित रूप से अंडाणु मुहय्या करवाता है और ये आदान-प्रदान पूरी तरह से अनियंत्रित है।

हमारे देश ने मूल कोशिका शोध के लिए यूरोप की तीन कम्पनियों व ब्रिटिश सरकार के साथ सार्वजनिक-निजी साझेदारी का भी ऐलान किया है।

भारत में प्रजनन पर्यटन को न्यायसंगत ठहराने के पीछे यह दलील दी जाती है कि यह एक मुनाफ़े का सौदा है- अपने जैविक बच्चे को जन्म देने के लिए उत्सुक विदेशी महिलाएं अब भारतीय महिलाओं की मदद से ऐसा कर सकती हैं और भारतीय महिलाओं के लिए यह एक पैसा कमाने का साधन है।

सरकार ने बड़े हिचकते हुए इस तेज़ी से फैलते बाज़ार को नियंत्रित करने के लिए एक कानून का मसौदा तैयार किया है। पर जैसा कि पहले भी कहा गया है यह कानून सरोगेट महिलाओं के हितों के सुरक्षा प्रदान नहीं करता बल्कि उसी उद्योग की पैरवी करता है जिसे नियंत्रित करने के लिए इसकी ज़रूरत है। हालंकि प्रजनन पर्यटन को वैध ठहराने के लिए "प्रजनन चयन" की दलील पेश की जाती रही है परन्तु इस पूरी बहस में प्रजनन न्याय के विचार पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। अध्ययन बताते है कि महिलाएं अपनी कोख किराए पर उठाने के लिए आर्थिक ज़रूरतों द्वारा बाध्य हो जाती हैं और इस प्रक्रिया के दौरान बिचौलिए और दलाल उनका फ़ायदा उठाते हैं। (पाण्डे 2009)

वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारत खुद को समाहित करने के लिए प्रयासरत है। हम प्रभावशाली विकास दर और बाज़ार के उतार-चढ़ाव झेलने की क़ाबलियत का दावा भी कर रहे हैं। इसके लिए प्रजनन पर्यटन से मिलने वाली विदेशी पूंजी ज़रूरी साधन है। भारत यौनिक और प्रजनन दासता को एक सार्वभौमिक वस्तु बनाकर वैश्वीकरण की दौड़ में शामिल हो गया है। तो क्या ऐसे समय में हमें व्यावसायिक सरोगेसी पर नियंत्रण की जगह प्रतिबंध लगाने की मांग नहीं करनी चाहिए? फिलहाल भारत में इस उद्योग को पूरी तरह अनियंत्रित रूप से चलाने की आज़ादी है। इसे नियंत्रित करके, सीमित तरीकों से इस व्यापार को चलाने की इजाज़त देकर भारत एक ऐसा अनोखा देश बन जाएगा जिसे अपनी महिलाओं के प्रजनन श्रम की बिक्री करने में गर्व महसूस होता है, कुछ वैसे ही जैसे दास प्रथा के दौरान अपने दासों के श्रम को बेचकर उनके मालिक और स्वामी गौरवान्वित महसूस करते थे।

मोहन राव *जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के सेंटर फ़ॉर सोशल मेडिसिन एण्ड कम्यूनिटी हैल्थ में कार्यरत हैं।*